पाँचवा अध्याय

नीति-काव्य का साहित्यिक सौंदर्य

अध्याय पाँचवा :

५) नीतिकाव्य का साहित्यिक सौंदर्य

साहित्य में दो ही महत्वपूर्ण शब्द माने जाते हैं - क्या और कैसे। "क्या" का संबंध काव्य एवं साहित्य में वर्णित विषय से है और "कैसे" का संबंध वर्णन की प्रणाली से है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से इसे भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष कहा जाता है। कला-पक्ष कैसे से और भाव-पक्ष क्या से संबंध रखता है। आ. वामन ने रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया था -

"रीतिरात्मा काव्यस्य।" रीति से उनका अभिप्राय था पदों का विशेष रचना - कौशल -"विशिष्टा पद-रचना रीतिः।" स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि वामनाचार्य ने क्यों और कैसे में अधिक महत्व "कैसे" को दिया है।

परंतु पाश्चात्य विचारकों ने शैली को अधिक महत्व दिया है। यह वह साधन है जिससे कला तथा साहित्य में वर्णित भाव या विचार के प्रभाव तथा रसास्वाद में सहायता मिलती है। अतः स्पष्ट है कि शैली, भावाभिव्यक्ति की रीति को कहते हैं। शैली में वैयक्तिकता का अंश होता है। इसी कारण शैली से व्यक्तित्व भी अभिव्यंजित हो जाता है। डॉ. श्यामसुन्दरदास भी शैली की विशेषता इस बात में मानते हैं कि -

" हम अपनी भाषा को अपने भावों, विचारों और कल्पनाओं को अधिकाधिक प्रभावशाली बना सकें।"[१]

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में जो विपुल साहित्य निर्माण हुआ, उसे सब जानते हैं। जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, रहीम, रसखान, मतिराम, बिहारी, सेनापति आदि सभी मध्ययुग के महाकवि हैं। कुछ कृतियों में डिंगल - राजस्थानी

आदि भाषाओं का प्रयोग किया गया है। परंतु सबसे अधिक प्राधान्य अवधी और ब्रज का ही रहा है। ये दो भाषाएँ उस काल के साहित्यिकों का कंठहार थीं। बहुत से कवियों ने इन दोनों भाषाओं का अपना साहित्य लिखने के लिए प्रयोग किया है। कवि रहीम ने भी दोनों भाषाओं का उपयोग अपने साहित्य के लिए कुशलता से किया है।

अवधी भाषा :

हिन्दी में प्राचीन काव्य भाषाओं में अवधी का स्थान अद्वितीय है। आज भी लखनऊ, प्रतापगढ, सीतापुर तथा उन्नाव आदि जिलों में अवधी का, जन-भाषा के रूप में प्रचलन है। प्राचीनकाल के सूफी प्रेमाख्यान काव्यों की अवधी भाषा साम्राज्ञी रही थी। जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग अकृत्रिम रूप में किया है, तो तुलसी ने अवधी भाषा का प्रयोग परिष्कृत एवं संस्कृत रूप में "रामचरितमानस" में किया है।

रहीम की अवधी इन दोनों के बीच की कडी है। रहीम ने अवधी का उपयोग श्रृंगार - निरूपण में ही किया है, नीतिकथन में नहीं, लेकिन वैराग्य एवं भक्ति संबंधी बरवों में अवधी का प्रयोग हुआ है।

ब्रज भाषा :

रहीम के व्यक्तित्व में स्पष्ट हो चुका है कि वे भाषाविद थे। इसी कारण ब्रज भाषा का प्रयोग भी उन्होंने सरलता एवं स्वाभाविकता से किया है। ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवियों के काव्य में रहीम के दोहों को रखने से भी उनकी भाषा का सहज सौन्दर्य दिखाई देता है। उनके काव्य की सरलता, स्वाभाविकता, अकृत्रिमता अलग दिखाई देती है। इतना ही नहीं अवधी और ब्रज भाषाओं के अतिरिक्त रहीम के नीतिकाव्य में ऐसे भी प्रयोग मिलते हैं, जो इन दोनों भाषाओं से भिन्न हैं।

रहीम की भाषा अत्यंत प्रौढ तथा सक्षम है। उनका ब्रज और अवधी पर अधिकार था। इतना ही नहीं यह भी सर्वमान्य है कि उन्हें देश-विदेश की अनेक भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

रहीम ने अपने नीतिकाव्य में भी अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। जैसे विभिन्न व्यक्तियों की शैलियाँ भिन्न - भिन्न प्रकार की होती हैं, वैसे एक ही व्यक्ति भाव, विचार, विषय तथा परिस्थिती के अनुसार विभिन्न शैलियों में अपने विचार व्यक्त करता है। कभी वह सरल एवं सामान्य शैली अपनाता है, तो कभी अलंकृत एवं उदात्त। कभी वह प्रश्न द्वारा अपनी बात को स्पष्ट करता है, तो कहीं उदाहरण द्वारा। कभी वह उपदेश द्वारा अपनी बात स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए रहीम के ही दोहे ले लें तो उनके काव्य की सरलता, शब्दवृत्ति तथा समस्त शब्दावली से रहीम के दोहों को हजारों में पहचाना जा सकता है।

रहीम ने सभी शैलियों में अपनी कविता की है। शैली में वैयक्तिकता होने के कारण उससे कवि का व्यक्तित्व भी अभिव्यजित होता है।

रहीम की सर्वाधिक प्रिय दृष्टांत शैली :

रहीम ने अपनी बात को दृष्टान्त देकर पुष्ट किया है दृष्टान्त अथवा उदाहरण द्वारा अपने कथ्य को पुष्ट करने का नाम ही दृष्टान्त शैली है। रहीम के दृष्टान्त - चयन का क्षेत्रव्यापक और विस्तृत है। एक ओर यह उनके विस्तृत ज्ञान का द्योतक है और दूसरी ओर सच्चे हिन्दुत्व-प्रेम का आख्यायक है। उनके अधिकांश दृष्टान्त महाभारत, रामायण, पुराण आदि के प्रसंगों पर आधारित हैं। हिन्दू ग्रंथों के अतिरिक्त दृष्टान्त - चयन प्रकृति, दैनिक जीवन, अंत: प्रवृति मनोविज्ञान एवं सामान्य जन-जीवन के क्षेत्रों से भी किया गया है। द उदा -

जो पुरुषारथ ते कबहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम।।[२]

रहीम कहते हैं, "केवल पुरुषार्थ (उद्योग) करने से ही संपत्ति प्राप्त नहीं होती। यदि पुरुषार्थ से ही संपत्ति मिल जाती, तो महापुरुषार्थी भीम अपना पेट भरने के लिए वैराट के घर खाना बनाने वाला रसोइया न बनता। भीम जैसे पुरुष को भी दूसरों के यहाँ काम करना पडा।"

उपदेशात्मक शैली :

नीति के क्षेत्र में उपदेशात्मकता अधिक है। रहीम के उपदेशों में सरसता और कलात्मकता दिखाई देती है। उनकी उपदेशात्मक शैली की तीन धाराएँ हैं - विध्यात्मक अर्थात् विधि या धन रूप में ठोस क्रियात्मक संदेश देनेवाली शैली। निषेधात्मक अर्थात् किन्हीं क्रियाओं के आचरण का निषेध करनेवाली या ऋणात्मक शैली और तीसरी विधि - निषेध दोनों का साथ - साथ निर्वाह करनेवाली शैली। उदा -

रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।
हम तन डारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत॥[3]

रहीम कहते हैं, " कई लोग कपटी स्वभाव के होते हैं। ऐसे कपटी लोग जहाँ होते हैं और कपटी व्यवहार करते हैं वहाँ नहीं जाना चाहिए क्यों कि हम तो मेहनत करके कुएँ से ढेकुली द्वारा पानी खींचते हैं और कपटी मनुष्य बिना श्रम के अपना खेत सींचता है। ऐसे लोग अपना स्वार्थ ही देखते हैं। उनसे दूर ही रहना चाहिए।"

वर्णनात्मक शैली :

वैसे देखा जाय तो तथ्य कथनात्मक शैली का दूसरा रूप वर्णनात्मक शैली है। दोनों में अंतर इतना है कि पहले प्रकार में कवि की आत्मा कुछ रमती प्रतीत होती है जब कि इसमें कवि रुचि लेता नहीं जान पडता। सिर्फ फर्ज अदा करना है इसलिए काव्य लिखा जाता है। इसमें नीरसता रहती है।

तथ्य कथनात्मक शैली :

किसी तथ्य को सीधे - सादे ढंग से व्यक्त कर देना तथ्य कथनात्मक शैली है। यह नीतिकाव्य की प्रमुख शैली है। रहीम के नीतिकाव्य में तथ्य कथनात्मक शैली का अधिक उपयोग नहीं हुआ है। जहाँ इस शैली का उपयोग किया गया है, वहाँ सहज प्रतिभा के बल पर कथनों को नितान्त नीरस होने से बचाया गया है। जैसे -

खैर खून खांसी खुसी, बैर प्रीत मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान।।[4]

रहीम कहते हैं, " कुशलता, खून, खाँसी, प्रसन्नता, शत्रुता, प्रेम और शराब का पीना दबाने से नहीं दबता। वह अपने आप प्रकट हो जाता है और संसार के सभी लोग इन बातों को जान जाते हैं।

प्रश्न शैली :

प्रश्न पूछकर नीति कहने की शैली अत्यंत प्राचीन तथा प्रसिध्द है। संस्कृत भाषा के कवियों ने इस शैली में अधिक नीति - काव्य लिखा है। इन कवियों ने संपूर्ण छन्द में केवल एक ही प्रश्न पूछा है, तो कई छन्दों में प्रश्न ही प्रश्न पूछे हैं। ये प्रश्न पहले, बीच में और अंत में भी होते हैं। प्रश्न ही अपना आशय व्यक्त करते हैं। प्रश्न के माध्यम से ही कवि अपना लक्ष्य पूरा करता है। उदा -

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।[5]

रहीम कहते हैं, "कमला (लक्ष्मी) कभी स्थिर नहीं रहती अर्थात् धन कहीं भी एक जगह पर नहीं रहता। वह कभी किसी के पास रहता है, तो कभी

और किसी के पास। वृध्द विष्णु की कमला पत्नी होने के कारण वह चंचल है। अर्थात् जिस प्रकार वृध्द की पत्नी चंचल स्वभाव की होती है उसी प्रकार लक्ष्मी का स्वभाव भी चंचल है।"

प्रश्नोत्तर शैली :

जिस में प्रश्न के साथ उत्तर भी निहीत होता है वही प्रश्नोत्तर शैली है। प्रश्न जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं और तुरन्त ही उसका शमन होता है, इसी कारण सामान्य पाठकों के लिए यह शैली उपयुक्त है। उदा -

धूर धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सोई ढूंढत गजराज।।[६]

रहीम कहते हैं, "हाथी अपने सिर पर धूल डालता है। वह ऐसा क्यों करता है ? इसका उत्तर वे देते हैं कि गजराज वह रज खोजता है जिससे गौतम मुनि की पत्नी अहिल्या का उध्दार हो चुका था। इस प्रकार हाथी भी अपने उध्दार की इच्छा मन में रखते हुए धूल को अपने सिर पर डालता रहता है।"

संवाद शैली :

प्रश्नोत्तर शैली में प्रश्न करनेवाला और उसका उत्तर देनेवाला भी कवि स्वयं होता है। परंतु उसमें प्रश्न करनेवाला एक और उसका उत्तर देनेवाला दूसरा होता है उसे संवाद शैली कहा जाता है।

रहीम के बारेमें एक किंवदन्ती इसी संदर्भ में मिलती है कि तुलसीदास ने दो चरण लिखकर रहीम के पास भेजे थे, अंतिम दो चरणों की पूर्ति रहीम ने की थी। उदा -

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।[७]

"स्व-र्गलोक की देव स्त्रियाँ, मानव-लोक की मानव स्त्रियाँ और नाग-लोक की नाग स्त्रियाँ सब की एक ही इच्छा दिखायी देती है कि उनके तुलसी जैसा स्वर्गगुण संपन्न पुत्र हो और वे उसे गोद में उठाये हुये प्रसन्न होकर इधर-उधर विचरती रहें। तुलसी को जन्म देकर हुलसी को जो प्रसन्नता प्राप्त हुई वैसी ही प्रसन्नता प्राप्त हुई वैसी ही प्रसन्नता उन्हें भी प्राप्त हो।"

तर्क शैली :

कवि अपने किसी कथन की पुष्टि के लिए तर्क प्रस्तुत करता है, तब तर्क शैली बनती है। खण्डन - मण्डनात्मक ग्रंथों में इसी शैली का बोलबाला देखा जाता है। नैतिक सिध्दान्तों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए इस शैली का अवलंब लाभप्रद सिध्द होता है। रहीम के दोहों में तर्क शैली दिखाई देती है। उदा -

रहिमन भेषज के लिए, काल जीत जो जात।
बडे-बडे समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात।[6]

रहीम कहते हैं, "अगर चिकित्सा करने से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है, तो बडे - बडे समर्थ व्यक्ति हुए हैं, वे तो नहीं मर सकते थे। फिर वे क्यों मर गए ? मृत्यु के सामने किसीकी कुछ भी नहीं चलती।"

अलंकृत शैली :

कवि की सौन्दर्य चेतना जब अपनी सृष्टि को सजाने के लिए शब्द -अर्थ का विशेष विधान रचाती है तब वहाँ शैली अलंकृत हो जाती है। नीति जैसे उपयोगी परंतु शुष्क विषय में सुरुचि, प्रभाव तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अलंकृत शैली का विधान और भी आवश्यक है। रहीम की शैली स्वभावत: ही अलंकृत है। उनके दोहे अनुप्रास, यमक तथा रूपक आदि की स्वाभाविक, अकृत्रिमता

से युक्त है। उदा -

"रहिमन" यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन कहँ उड़ि जान दे, गरूए राखि बटोर।।[९]

रहिम कहते हैं, "मानव का शरीर सूप के समान है। इससे संसार को अच्छी तरह से फटक कर देखना चाहिए। जिस प्रकार सूप भूसा आदि भारी वस्तुओं को रख लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी संसार से असार बातों को छोड देना चाहिए और अच्छी, तत्वपूर्ण बातों को इकट्ठा करना चाहिए।"

संख्यात्मक शैली :

नीति - कथन के क्षेत्र में वस्तुओं की एक, दो, तीन, चार इ. संख्याएँ गिनाकर उनके गुण, कर्म, स्वभाव कहने की परंपरा प्राचीन है। इन में संख्याओं का स्पष्ट उल्लेख होने के कारण ही इसे संख्यात्मक नाम दिया गया है। हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों ने भी अनेक स्थलों पर नीति - कथन में इस शैली का उपयोग किया है। रहीम के कई दोहों में संख्यात्मक शैली दिखाई देती है। उदा -

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहि फलही अधाय।।[१०]

रहीम कहते हैं, " एक को ही साधने से सब कार्य सिध्द हो जाते हैं और सब को साधने से कोई कार्य सिध्द नहीं होता। जड को ही सींचने से सारा वृक्ष फूलने - फलने लगता है, उसी प्रकार मुख्य व्यक्ति को वश में करने से सारी कार्य सिध्दियाँ हो जाती हैं।"

अन्योक्ति शैली :

अन्योक्ति का अर्थ है कि - अन्य के प्रति कही गई उक्ति। जहाँ साधर्म्य के कारण उक्ति का विशेषार्थ प्रत्यक्ष वर्णित वस्तु के अतिरिक्त किसी

अन्य पर घटित होता है, वहाँ अन्योक्ति मानी जाती है। यह शैली नीतिकवियों की प्रिय शैली है। गणपति, जगन्नाथ, वीरेश्वर, सोमनाथ, नीलकंठ आदि अनेक कवियों ने "अन्योक्ति शतक", अन्योपदेश शतक" जैसे अनेक नीति - ग्रंथों का प्रणयन किया है।

रहीम के दोहों में अन्योक्ति शैली थोडी मात्रा में दिखाई देती है। साथ ही उन्होंने पान, खान, तबला, खजूर आदि विषयों पर अन्योक्तियाँ लिखी हैं। उदा -

काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देई।।[११]

रहीम कहते हैं, " जिसका कोई नहीं होता उसकी रक्षा करनेवाला भगवान होता है। जब बाज का पंख टूट जाता है तो वह किसी काम का नहीं रहता। उस अवस्था में उसे कोई नहीं खरीदता फिर भी भगवान उसे भोजन प्रदान करता है। उसकी रक्षा करता है।

प्रतीकात्मक शैली :

जो गहन भाव होते हैं, उन्हें प्रतीकोंद्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रकृति के लिए वृक्ष तथा आत्मा के लिए पक्षी प्रतीक प्रसिध्द है। इतना ही नहीं नाथों, सिध्दों तथा संतों ने अपनी योग एवं आध्यात्म विषयक चर्चा में प्रतीकों का प्रयोग खुलकर किया था। नीति - काव्य में प्रतीकों का प्रयोग उतना नहीं हुआ है।

रहीम ने अपने नीति - काव्य में थोडा उपयोग प्रतीकों का किया है। उन्होंने विपरीत स्वभाव के लिए "बेर - केर" का तथा मानव शरीर के लिए "कागद को पूतरा" का प्रयोग किया है। इसी तरह ढाक सामान्य स्थिति

का खीरा कपटपूर्ण व्यवहार का, मछली सच्चे प्रेम का तथा चातक एकनिष्ठता का प्रतीक है। उदा -

मीन काटि जल धोईए, खाए अधिक पियास।
"रहिमन" प्रीति सराहिए, मुयेड मीत कै आस।।[१२]

रहीम कहते हैं, " मछली और पानी में अटूट प्यार होता है। मछली पानी के बिना जी ही नहीं सकती। मछली को काटकर खाने पर खाने वाले को बहुत प्यास लगती है। काटकर खायी हुयी मछली मरकर चाहे व्यक्ति के पेट में जाय, पर वहाँ भी वह पानी। पानी"।। ही पुकारती है। पानी ही उसका जीवनाधार है, पानी ही उसका सर्वस्व। क्या जीते जी और क्या मरने पर - मछली अपने प्रियतम (पानी) को एक पल के लिये भी भूल नहीं सकती।"

पुनरावृत्ति शैली :

पुनरावृत्ति का अर्थ है एक ही शब्द अथवा भाव का एक से अधिक बार आना। रहीम के दोहों में शब्दावृत्ति अधिक और भाववृत्ति कम है। वे एक हीं शब्द को दो बार, तीन बार यहाँ तक कि चार बार तक दोहराने में भी नहीं चूकते। परंतु पुनरावृत्ति के कारण काव्य - सौन्दर्य और भाव - सौन्दर्य में किसी प्रकार की हानि नहीं पहूँचती है।

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहि।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगहि।।[१३]

रहीम कहते हैं, " लकडी आदि जो वस्तु सुलगती है वह सुलग कर बुझ जाती है और जब सुलग कर बुझ जाती है तो पुन: नहीं सुलगती। परंतु प्रेम में जो लोग दग्ध होते हैं वे बुझ - बुझ कर भी सुलगते रहते हैं अर्थात् प्रेम की अग्नि सदैव जलती रहती है।

सुबोध शैली :

रहीम जन – जन के कवि होने के कारण उनके दोहों में शैली की सुबोधता है। उन्होंने जन – जीवन के उपयोग संबंधी नीति के दोहे जन-सुलभ भाषा में गाए हैं। उनके दोहे एक बार पढने से झट् से ध्यान में आते हैं। शैली की सुगमता का इससे बडा प्रमाण और नहीं हो सकता। दोहे का अर्थ लगाने के लिए रहीम ने पाठकों को बौध्दिक कष्ट नहीं दिया है। उदा-

रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ।।[१४]

रहीम कहते हैं, " अगर संकट कुछ समय के लिये हो तो वह संकट अच्छा है, क्यों कि आपत्ति में ही सब के विषय में जाना जा सकता है कि संसार में कौन हित करनेवाला है और कौन अहितकारी है।"

इसके सिवा रहीम के नीति – काव्य में संबोधनात्मक शैली, प्रबोधनात्मक शैली, आत्मप्रबोधनात मक शैली, रहस्यात्मक शैली, कूट शैली, निर्णयात्मक शैली, भी दिखाई देती है।

रहीम तो भाषाविद थे। इसी कारण रहीम ने अपने नीति – काव्य के लिए ब्रजभाषा को अपनाया। उनके काव्य में भाषा का सहज सौन्दर्य नजर आता है। रहीम संस्कृत भाषा भी अच्छी तरह से जानते थे। इसीलिए उनके काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग कम नहीं है। साथ ही तद्भव शब्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है।

रहीम ने ब्रजभाषा के साथ अवधी भाषा को भी अपनाया है। उसका प्रयोग आधुनिक खडीबोली के सन्निकट लगता है। जैसे चाँद की रोशनाई, कान्हा बंशी बजाई, परम प्यारे साँवरे को मिलाओ आदि।

रहीम ने जितने भी दोहे लिखे हैं उनमें एक स्वाभाविक गति प्राप्त हो गई है। एक शब्द के पश्चात् दूसरा और दूसरे के पश्चात् तीसरा ऐसे आसानी से शब्द निकलते हैं। उनमें किसी प्रकार की बेडौलता नहीं आयी है। शब्दों का चयन साफ - सुथरा है, इसी दृष्टी से रहीम की भाषा अपने में अपना उदाहरण स्वयं है।

उनके दोहों की भाषा में वर्णों का ऐसा सुखद संयोजन हुआ है कि जिसको पढते समय, निर्बाध गति से निकलती हुई ध्वनि में विशेष सरलता आती है। यही सरलता उनकी नीतित - वर्ण - योजना एवं शब्द-संगठन का प्रतिफल है। उनके अधिकांश दोहों में वर्णों का क्रम इस प्रकार सजाया गया है कि वे परस्पर असंबंधित होते हुए भी सुसंबध्द तथा पृथक होते हुए भी अपृथक प्रतीत होते हैं।

रहीम का काव्य शब्द - चयन, आकार एवं लाघव की दृष्टि से ही नहीं अपितु अर्थ एवं प्रयोग की दृष्टि से भी सरल है। रहीम सामान्य शब्द को कुछ इस प्रकार से प्रयुक्त करते हैं कि उस पर जितना विचार कीजिए उतना ही अर्थ - सौन्दर्य निखरता प्रतीत होता है। रहीम ने अपने काव्य में रस, ध्वनि, अलंकार, नीति और गांभीर्य भरने का कमाल किया है।

रहीम के नीति - काव्य का अलंकार सौन्दर्य :

रहीम के अलंकार शब्दमूलक हो, या अर्थमूलक, चाहे सादृश्य मूलक सभी प्रकार से वे स्वाभाविक बन पडे हैं। "अलंकार" शब्द का अर्थ है गहना, आभूषण। शरीर, गृह वस्त्र आदि को सुन्दर बनाने के लिए अलंकार का उपयोग किया जाता है। वैसे वाणी को अधिक सुंदर बनाने अथवा काव्य-सौन्दर्य की साधना के उपकरण ही अलंकार हैं।

अलंकार संप्रदाय के आदि - आचार्य भामह से लेकेर अलंकार समर्थकों के प्रयत्नों से भी अलंकार को काव्य की आत्मा का स्थान प्राप्त नहीं हो सका। तात्पर्य यह है कि काव्य के नित्य धर्म रस, भावादि हैं, और अनित्य धर्म अलंकार। अलंकार काव्य में वहाँ शोभित होते हैं, जहाँ रस, भाव एवं विचार आदि का सौन्दर्य होता है।

रहीम के अलंकारों में अस्वाभाविकता, कृत्रिमता, नहीं है। उन्होंने भारी भरकम अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। उनके दोहों में प्रयुक्त अलंकार -

शब्दालंकार - अनुप्रास :

ससि की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहि सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय।।[१५]

रहीम कहते हैं, "रात के समय चाँदनी का प्रकाश सब को सुहावना लगता है, परंतु चोर के मन में दु:ख निर्माण करता है।"

यहाँ स्वरों की विषमता होते हुए भी "स", "ट" व्यंजनों की समता एवं आवृत्ति के कारण अनुप्रास की सुन्दर छटा दिखाई देती है।

यमक अलंकार :

जहाँ शब्दों की भिन्न - भिन्न अर्थों में अनेक बार आवृत्ति हो वहाँ यमक अलंकार होता है -

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोइए, टूटे मुक्ताहार ।।[१६]

रहीम कहते हैं, " प्रिय व्यक्ति रूठ जाय तो उसे बार - बार मनाना चाहिए। जैसे हम मोतियों का हार टूट जाय तो उसे बार - बार धागे में पिरो देते हैं। वैसे ही प्रिय व्यक्ति को मनाना चाहिए।"

प्रथम दोहे में सुजन के साथ टूटे का अर्थ किन्हीं कारणों से पृथक हो जाना तथा मुक्ताहार एवं सौ बार के साथ टूटे का अर्थ है भंजन होना या टूट कर टूकडे - टूकडे हो जाना। यहाँ शब्दों के पृथक-पृथक बार पृथक - पृथक अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण "यमक" अलंकार है।

श्लेष अलंकार :

"श्लेष" धातु का अर्थ होता है चिपका हुआ। जहाँ शब्द के एक अर्थ के साथ उसका दूसरा अर्थ भी साथ-साथ चिपका रहता है, वहाँ श्लेष अलंकार होता है। इस में एक ही शब्द के एकाधिक अर्थ प्राप्त होते हैं। उदा-

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून ।।[१७]

रहीम कहते हैं, "पानी रखना चाहिए क्यों कि पानी के बिना सब सूना हो जाता है अर्थात् व्यर्थ हो जाता है। मोती का पानी (कान्ति) चला जाने से मोती बेकार हो जाता है। उसी प्रकार मनुष्य से पानी अर्थात् आत्मसम्मान, प्रतिष्ठा चली जाने से वह कहीं का नहीं रह जाता है, ऐसे ही चूने में से पानी चला जाता है, तो चूना बेकार हो जाता है।"

उपर्युक्त दोहे में पानी शब्द के जल, चमक, हया (शर्म) कई अर्थ होते हैं। एक ही शब्द के साथ ये अनेक अर्थ चिपके रहते हैं।

पुनरुक्ति प्रकाश :

जहाँ भाव को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक ही शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार प्रयोग किया जाय वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार माना जाता है। यह अलंकार रहीम के काव्य में अधिक दिखाई देता है। उदा -

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।।[18]

रहीम कहते हैं, "आदमी जीवन जीता है। वह कभी अच्छा काम करता है, कभी बुरा काम करता है। ऐसा उसका जीवन बीत जाता है। व्यक्ति को अच्छा काम करते हुए जीवन बिताना चाहिए। जितना भी जीवन बीत गया उसमें अगर अच्छा कार्य न कर सके तो बचे हुए जीवन में अच्छा कार्य करना चाहिए।"कुछ लोगों का स्वभाव ऐसा होता है कि वे काम पडनेपर बहुत अच्छा बर्ताव करते है, वे ही लोग काम खत्म होने पर मुडकर भी नहीं देखते, नहीं बोलते। ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिए।

वीप्सा अलंकार :

वीप्सा का अर्थ है, विशिष्ट इच्छा। जहाँ प्रेम, श्रध्दा, शिक्षा, उपेक्षा, उत्साह, आश्चर्य, घृणा, आदर, वैराग्य आदि भावों को विशिष्ट रूप से प्रकट करने की इच्छा से एक ही शब्द की बार - बार आवृत्ति हो, वहाँ वीप्सा अलंकार होता है। उदा -

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँडए तर की गाँठ में,गाँठ, गाँठ रस होय।। [19]

रहीम कहते हैं, " संसार जानता है कि जहाँ गाँठ अर्थात् मनोमालिन्यं होता है वहाँ रस (प्रेम) नहीं होता, परंतु विवाह मंडप के नीचे वर - वधू को परस्पर बाँधने वाली गाँठ में रस (प्रेम) होता है।"

भाषासम अलंकार :

भाषासम अलंकार उसे कहते हैं जब कई भाषाओं का एक ही छन्द में एक साथ प्रयोग होता है। जैसे खुसरो, रहीम, नरहरिदास आदि कवियों ने

एकाधिक भाषाओं का एक ही छन्द में प्रयोग किया है। रहीम देश, विदेश की भाषाएँ जानते थे। रहीम का "मदनाष्टक" तथा "खेटकौतुकम" इस दृष्टि से भाषासम अलंकार की ही कृतियाँ मानी जाती हैं। उदा - मदना-ष्टक का-

सरद - निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ।।
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड भागी।
मदन - शिरसि भूय: क्या बला आन लगी ।।[२०]

रहीम कहते हैं, " शरद ऋतु की रात है, आकाश में सफेद चन्द्रमा निकल आया है, सभी ओर उसका प्रकाश फैला है, फूलों की मधुर सुगंध वातावरण को उत्तेजित कर रही है। ऐसी मधुर चाँदनी रात में लताओं से भरे कुंज में बैठकर कान्हा बंशी बजाने लगे हैं। बंशी की मधुर धुन सुनकर राधा पति, पुत्र, निद्रा सभी को छोडकर श्रीकृष्ण की ओर जाने लगी। जैसे मदन ने अपना बाण चलाया और प्रेम में पागल होकर वह श्रीकृष्ण की ओर जाने लगी।"

अर्थालंकार :

अलंकार - चमत्कार जहाँ अर्थ पर निर्भर रहता है वहाँ अर्थालंकार होता है। किसी शब्द विशेष का पर्यायवाची रख देने पर भी जहाँ अलंकार विशेष के निर्वाह में बाधा उपस्थित नहीं होती है, वहाँ अर्थालंकार होता है। अर्थालंकारों की संख्या अधिक है।

जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ।।[२१]

रहीम कहते हैं, "जो गरीबों से प्रेम करते हैं, ऐसे लोग धन्य हैं। नहीं तो कहाँ बेचारा सुदामा और कहाँ श्रीकृष्ण। सुदामा उनकी मित्रता के योग्य था लेकिन फिर भी भगवान ने सुदामा को मित्र भाव से अपनाया। "

उदाहरण अलंकार :

रहीम के काव्य में उदाहरण अलंकार अनेक स्थानों पर देखने को मिलते हैं। उदा -

यो रहीम सुख होत है, परउपकारी अंग।
बाँटन वारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग।।[22]

रहीम कहते हैं, "परोपकार करने में ही आनंद और प्रसन्नता है। परोपकार करने से मन को आनंद मिलता है, सुख होता है। जैसे मेहंदी बाँटते समय मेहंदी से हाथ रंग जाते हैं अथात् मेहंदी में परोपकार का गुण होने के कारण मेहंदी बॉटने वाले के हाथ रंग जाते हैं।"

उपमा अलंकार :

दो वस्तुओं में विभिन्नता एवं असमानता होते हुए भी जहाँ साधर्म्य द्वारा दोनों में साम्यमूलक संबंध स्थापित किया जाता है, वहाँ उपमा अलंकार होता है। रहीम के नीति - काव्य से उपमा अलंकार का एक उदाहरण इस प्रकार है -

अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहू में मिली, निरस बाँस की फाँस।।[23]

रहीम कहते हैं, " अमृत जैसे मीठे वचनों में अगर मन की मलीनता छिपी रहती है तो वह ऐसी मालूम पडती है कि मीठी मिश्री में बेरस बाँस की फाँस मिला दी हो।"

रूपक अलंकार :

वाचक शब्द और साधर्म्य के अभाव में उपमेय और उपमान का एक रूप हो जाना ही रूपक है। रहीम के काव्य में रूपक के सुंदर उदाहरण मिलते हैं। उदा-

मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहीं जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय।।[२४]

रहीम कहते हैं, " कामदेव रूपी माली की उपज के बारेमें कुछ कहना कठिन है, क्यों कि फूल तो श्याम के हृदय में उपजते हैं अर्थात् काम का आनंद श्याम के हृदय में निर्माण होता है और फल श्यामा के हृदय पर लगता है अर्थात् काम को उद्दीपित करने वाले स्तनों का निर्माण श्यामा के वृक्षस्थल पर हो गया है।"

निदर्शना अलंकार :

जब दो वाक्यों में असमता होते हुए भी ऐसा संबंध स्थापित होता है कि उसमें साम्य प्रतिभासित होने लगे तब निदर्शना अलंकार होता है। दोनों वाक्यों का महत्वपूर्ण ऐक्य, फल - सादृश्य पर निर्भर रहता है।

जे रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।[२५]

रहीम कहते हैं, "जो लोग अच्छे स्वभाव के होते हैं, उनपर बुरी बातों का प्रभाव नहीं पडता है। जैसे चंदन के वृक्ष के साथ जहरीले सर्प हमेशा रहते हैं, परंतु चंदन के वृक्ष पर उनके विष का प्रभाव नहीं पडता।"

यहाँ उत्तम प्रकृति पुरुषों एवं चन्दन वृक्षों में कोई रूप अथवा बिम्ब - प्रतिबिम्ब में साम्य न होते हुए भी फल - सादृश्य स्थापित किया गया है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार :

किसी विशेष कथन को सामान्य द्वारा अथवा सामान्य कथन को किसी विशेष द्वारा समर्थित करने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। रहीम के काव्य

में अर्थान्तरन्यास अलंकार के बहुत उदाहरण मिलते हैं –

छोटेन सौं सोहैं बडे, कह "रहीम" यह रेख।
सहसन के हय बाँधियत, लै दमरी कै मेख।।[२६]

रहीम कहते हैं, " छोटों से बडे भी शोभित होते हैं, यह बात पत्थर पर खिंची रेखा के समान निश्चित है क्यों कि हजारों रुपये की कीमत का घोडा दमडी की खूँट से बँधा रहता है।"

स्वभावोक्ति अलंकार :

किसी स्वभाव, वस्तु – व्यापार अथवा विचार का स्वाभाविक किन्तु प्रभावशाली ढंग से वर्णन करना स्वभावोक्ति अलंकार कहलाता है। रहीम के कई दोहे स्वाभाविक ही हैं। उदा –

मीन काटि जल धोइए, खाए अधिक पियास।
"रहिमन" प्रीती सराहिए, मुयेड मीत कै आस।।[२७]

रहीम कहते हैं, " मछली और पानी में अटूट प्यार होता है। मछली पानी के बिना जी ही नहीं सकती। मछली को काटकर खाने पर खानेवाले को बहुत प्यास लगती है। काटकर खायी हुयी मछली मरकर चाहे व्यक्ती के पेट में जाय, पर वहाँ भी वह पानी। पानी।। ही पुकारती है। पानी ही उसका जीवनाधार है, पानी ही उसका सर्वस्व। क्या जीते जी और क्या मरने पर – मछली अपने प्रियतम (पानी) को एक पल के लिये भी भूल नहीं सकती।"

लोकोक्ति अलंकार :

छन्द में जहाँ अभिसित अर्थ को किसी लोकोक्ति द्वारा समर्थित कराया जाय, वहाँ लोकोक्ति अलंकार माना जाता है। भाषा को अधिक

प्रभावशाली बनाने के लिए इस अलंकार का प्रयोग किया जाता है। रहीम ने अपनी भाषा को प्रभावशाली का प्रयोग किया है। उदा -

कैसे निबहे निबल जन, करि सबलन सौं गैर।
रहिमन बसी सागर विषै, करत मगर सौं बैर।।[28]

रहीम कहते हैं, "निर्बल मनुष्य को सबल मनुष्य के साथ शत्रुता नहीं करनी चाहिए, क्यों कि सागर में रहकर मगर से बैर नहीं निभ सकता।"

परिकर अलंकार :

विशेषण के साभिप्राय प्रयोग को ही परिकर कहा जाता है। इस परिकर के प्रयोग में व्यंग्यार्थ एवं चमत्कार की प्रधानता होती है। इस प्रयोग में दु:ख - दैन्य, प्रभु के प्रति समर्पित भाव की ओर भी संकेत होता है। उदा-

अच्युत चरण - तरंगिणी, शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजौ इन्दव भाल ।।[29]

रहीम कहते हैं, " हे गंगे। तुम्हारी महिमा से भक्त मरने के बाद महादेव का पद प्राप्त कर लेते हैं। लेकि न तुम मुझे विष्णु सम न बनाना क्यों कि विष्णु सम बनाने पर तुम विष्णु के चरणों से निकलने वाली नदी कहलाओगी जो उचित नहीं। तो तुम मुझे महादेव सम ही बनाना ताकि मैं तुम्हें आदर के साथ। मस्तक पर धारण कर सकूँ।"

परिकरांकुर अलंकार :

जैसे साभिप्राय विशेषण के प्रयोग में परिकर अलंकार होता है उसी प्रकार साभिप्राय विशेष्य के प्रयोग में परिकरांकुर अलंकार होता है। उदा -

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों चंचला होय।।[30]

रहीम कहते हैं, "सभी जानते हैं विष्णु की पत्नी कमला (लक्ष्मी) चंचल होती है। वह एक स्थान पर स्थिरा नहीं रहती। साथ ही वह विष्णु जैसे वृध्द की जवान पत्नी है। अत: उसका स्वभाव चंचल है।"

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त रहीम के नीति-काव्य में कतिपय अन्य अलंकारों के प्रयोग भी देखने को मिलते हैं।

सहोक्ति अलंकार :

जहाँ सह, साथ तथा संग आदि शब्दों के प्रयोग से सहभाव का चमत्कार होता है। वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है। उदा -

रहिमन नीच संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कालरिन हाथ लखि मद समझाहिं सब ताहि।।[31]

रहीम कहते हैं, "इस संसार में अच्छे और बुरे स्वभाव के लोग होते हैं। जो नीच लोग होते हैं उनकी संगति के कारण अच्छे लोगों को भी कलंक लगता है। जैसे शराब बेचने वाली स्त्री के हाथ में दूध देखकर सब लोग उसे शराब समझते हैं। मतलब नीच लोगों की संगति के कारण अच्छे लोगों को भी कलंक लगता है।"

असंगति अलंकार :

जहाँ कार्य एवं कारण की भिन्नता से चमत्कार उत्पन्न हो जाता है वहाँ "असंगति" अलंकार होता है।

मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहि जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय।।[32]

रहीम कहते हैं, "कामदेव रूपी माली की उपज के बारेमें कुछ कहना कठिन है, क्यों कि फूल तो श्याम के हृदय में उपजते हैं अर्थात काम का आनंद श्याम के हृदय में निर्माण होता है और फल श्यामा के हृदय पर लगता है अर्थात् काम को उद्दीपित करने वाले स्तनों का निर्माण श्यामा के वृक्षस्थल पर हो गया है।"

अन्योन्य अलंकार :

दो वस्तुओं में परस्पर एक ही क्रिया अथवा समान संबंध का वर्णन अन्योन्य अलंकार है। उदा -

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसंत के माहिं।।[33]

"कौआ और कोयल दोनों एक समान होते हैं जब तक ये नहीं बोलते तब तक इनकी पहचान नहीं हो पाती। परंतु वसंत ऋतु जब आती है तो कोयल की मधुर आवाज से दोनों में अंतर स्पष्ट होता है।"

तद्गुण अलंकार :

अपने रंग, रूप, गंध एवं गुण का त्याग करके,पास की किसी वस्तु का गुण ग्रहण कर लेना, तद्गुण अलंकार है। उदा -

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाँति एक गुण तीन।
जैसो संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ।।[३४]

उपर्युक्त दोहे में रहीम ने स्वाति नक्षत्र के पानी के तीन गुण व्यक्त किए हैं। स्वाति नक्षत्र का पानी एक ही होता है, परंतु वह तीन स्थानों पर अपने तीन गुण प्रकट करता है। यह पानी केले के पत्ते पर पडने से कपूर बनता है,स्वाति नक्षत्र का पानी सीप के मुख में पडने से मोती बनता है, तो सर्प के मुख में पडने से विष बनता है। तात्पर्य यह कि जिसकी संगति में बैठ जायेंगे वैसा ही फल मिलता है।

उल्लास अलंकार :

जहां एक के गुण या दोष से दूसरे में गुण या दोष का उत्पन्न होना सिध्द किया जाता है वहीं उल्लास अलंकार होता है। उदा -

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग
बाँटन वारे के लगै, ज्यों मेंहदी का रंग।।[३५]

रहीम के अनुसार वह मनुष्य धन्य है क्यों कि उसका शरीर दूसरों पर उपकार करने में लगा रहता है। जैसे कि मेहंदी बाँटने वाले के हाथ भी मेहंदी से रंग जाते है। वैसे ही उपकार करनेवाले का शरीर सुशोभित होता है।

उत्तर अथवा प्रश्नोत्तर :

"हाजिर जबाबी" के इस अलंकार में प्रश्न का चमत्कारी उत्तर दिया जाता है उदा -

धूर धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, तो ढूँढत गजराज।।[३६]

हाथी हमेशा अपने सिर पर धूल डालता है उसे देखकर रहीम कहते हैं "वह ऐसा क्यों करता है? फिर वे इसका उत्तर देते हुए कहते है कि गजराज वह धूल खोजता है, जिससे गौतम मुनि की पत्नी अहिल्या का उध्दार हुआ था। अर्थात अपना भी उध्दार हो जाय इस इच्छा को मन में रखते हुए हाथी अपने सिर पर धूल डालता रहता है।"

ललित अलंकार :

इस अलंकार में प्रकृत की अपेक्षा अप्रकृत की विशेष चर्चा करनेवाली अभीष्ट बात को स्पष्टरूप से न कहकर उससे प्रतिबिम्ब मात्र का ही उल्लेख किया जाता है। रहीम ने दोहावली के प्रथम दोहे में गंगाजी के प्रति अपनी श्रध्दा का प्रतिबिंब व्यक्त किया है। उदा -

अच्युत चरण तरंगिनी, शिव-सिर-मालति -माल
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव भाल।।[३७]

रहीम ने उपर्युक्त दोहे में गंगा नदी की स्तुति की है। रहीम कहते हैं - "हे गंगे। तुम्हारी महिमा से भक्तजन मरने के बाद विष्णु पद और महादेव का पद प्राप्त करते हैं, लेकिन तुम मुझे विष्णु रूप न बनाना क्यों कि विष्णु रूप बनाने से तुम चरणों से निकलने वाली नदी कहलाओगी और जो उचित नहीं है। तुम मुझे महादेव रूप ही बनाना क्यों कि मैं तुम्हें आदर के साथ मस्तक पर धारण कर सकूँ।"

मीलित अलंकार :

समान - धर्मा एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में सर्वथा मिलकर खो जाना मीलित अलंकार है। रहीम ने प्रेम के बारेमें भावना व्यक्त करते हुए इस अलंकार का प्रयोग किया है। उदा -

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून।।[३८]

रहीम कहते हैं कि, " चूने और हल्दी के से मेल वाले प्रेम की सराहना करनी चाहिए क्यों कि हल्दि और चूना दोनों मिलकर अपना रंग छोड देते हैं। हल्दि अपना पीला रंग छोड देती है और चूना अपना सफेद रंग छोडकर दोनों लाल रंग के हो जाते हैं। अगर दो प्रेमिओं का प्रेम ऐसा है कि वे अपना अस्तित्व भूल कर एकाकार हो जाते हैं तो ऐसा ही प्रेम सराहनीय है।"

उत्प्रेक्षा अलंकार :

उपमेय की उपमान में सम्भावना प्रकट करना उत्प्रेक्षा अलंकार है। मनु, जनु, मानो, जानो प्राय: आदि शब्द उत्प्रेक्षा बोधक माने जाते हैं। उदा -

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हुजूर।
मानहु टेरत विटप चढि, मोहि समान को कूर।।[३९]

रहीम कहते हैं "जो मनुष्य बिना किसी गुण के बुध्दिमान लोगों के सामने अपनी बडाई करता हैं ऐसे व्यक्ति स्वयं ही मानो वृक्ष पर चढ कर अपनी मूर्खता व्यक्त करते हैं। असल में ऐसे लोग बुध्दिमान नहीं होते।"

रहीम के नीति - काव्य में छंदों का प्रयोग :

छंद भारतीय वाड.मय का अत्यंत गौरवपूर्ण शब्द माना जाता है। लेकिन रहीम के समय में छन्दों का महत्व असंदिग्ध था। छन्द रहीत कविता की कल्पना भी उस काल में नहीं की जा सकती थी बालकृष्ण "अकिंचन" ने लिखा है कि "रहीम ने स्वत: अपनी बहुविध छन्द - रचना का उल्लेख किया है। इतना ही नहीं उन्हें काव्य के लिए सर्वथा नवीन छन्द "बरवै" को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है।[४०] इससे स्पष्ट होता है कि रहीम काव्यप्रणयन के लिए छन्द को अत्यंत आवश्यक मानते थे। भक्ति के उस युग में रीति -विषयक नायिका - भेद का स्वयं निर्माण किया हुआ नवीन छन्द बरवै में रचना करना रहीम की आचार्यत्व-क्षमता का प्रमाण है।

छन्दों को दो प्रधान वर्गों में विभाजित किया जाता है। वैदिक और लौकिक- लौकिक छन्दों के दो भेद हैं- मात्रिक छन्द और लौकिक छन्द। बरवै छन्द के जनक रहीम माने जाते हैं। रहीम के पूर्व इसके अस्तित्व की विधमानता न होने के कारण किसी प्रकार का लक्षण निर्माण असंभव था।

बरवै छन्द के विषम चरणों में सात - सात मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण आता है। बरवै छन्द का निर्माण तो अपने आप में महत्त्वपूर्ण है ही, साथ ही हिन्दी से सर्वथा भिन्न फारसी भाषा में बरवै छन्दों का सृजन, शैली की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

मालिनी छन्द :

रहीम ने नीति - कथन के लिए मालिनी छन्द का प्रयोग नहीं किया है, परंतु संस्कृत कवियों को जो छन्द प्रिय थे, उनमें से मालिनी छन्द है। यह छन्द न-न-म-य-य- से बनता है। बाद में ८:७ वर्णों का नियम बनाया गया। हिन्दी में इस छन्द का विशुध्द प्रयोग करने वाले कवि इने - गिने हैं। रहीम ने अपनी मदनाष्टक रचना मालिनी छन्द में लिखी है।

सवैया छन्द :

ब्रजभाषा का सवैया छन्द प्रिय है। इसके प्रमुख कवि रसखान हैं। इस छन्द में २२ से २६ वर्णों तक का विधान है। सवैया लयमूलक छन्द है।

रहीम के सवैयों में भक्ति और श्रृंगार के साथ नीति विषयक सवैये देखे जाते हैं। वर्णक्रम एवं वर्ण - संख्या के अनुसार सवैये के अनेक भेद होते हैं। इनमें से छ: छन्द अधिक प्रसिध्द हैं। परंतु रहीम के काव्य में मत्तगयन्द सवैया, सुन्दरि सवैया, किरीट सवैया, दुर्मिल सवैया इन चार सवैयों के प्रयोग प्राप्त होते हैं।

घनाक्षरी छन्द :

घनाक्षरी छन्द सर्वाधिक प्रिय छन्द है। यह अपने आकार के कारण रस प्रपंच की पूर्ण सामग्री को एक ही स्थल पर उपस्थित कर देता है। इस कारण से ही रौद्र, वीर, बीभत्स और श्रृंगार आदि रसों के लिए इस छन्द का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। यह छन्द गेयता की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। वर्णों की दृष्टि से नियम विशेष में आबध्द न होने के कारण इसका प्रयोग सुखदता से और सहजता से किया जाता है।

घनाक्षरी, ब्रजभाषा का अपना छन्द है। सूरदास के पूर्व किसीने इस छन्द का प्रयोग किया हो, यह बात प्राप्त नहीं होती। सूफी संतों को छोडकर भक्तिकालीन कवियों ने घनाक्षरियाँ लिखी हैं।

गठन की दृष्टि से इसे मुक्तक दण्डक का एक भेद माना गया है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण, १६, १५ पर यति और अंत में गुरू रहता है। रहीम ने श्रृंगार, भक्ति तथा नीति काव्य के लिए घनाक्षरी छन्द का प्रयोग किया है।

पद :

भक्तिकालीन काव्य में पद का स्थान महत्वपूर्ण है। कृष्णभक्ति शाखा के संतों ने पदों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है। जैसे विद्यापति, सूरदास, अष्टछाप के कवि और मीरा ने अपना काव्य पदों के आधार पर निर्माण किया है। रामभक्ति शाखा के कवि तुलसीदास ने भी पदों का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

रहीम ने केवल दो पदों का प्रयोग किया है यह दोनों पद रहीम की सृजन प्रतिभा का परिचय देते हैं।

छप्पय :

छप्पय में छः पद होते हैं। यह एक संयुक्त छन्द है। यह विषम मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम चार पादों में लय का चढाव होता है और अंतिम दो में उतार होता है। इसी कारण यह छन्द वीर रस के लिए उपयुक्त है। तुलसीदास, भूषन, सूदन और पद्माकर ने छप्पय छन्द का प्रयोग किया है।

रहीम ने नायिका भेद के प्रारंभ में छप्पय लिखने का उल्लेख किया है। लेकिन उनके लिख छप्पय प्राप्त नहीं होते हैं। उनका केवल एक ही छप्पय "रहिमन विलास" तथा "रहीम रत्नावली" में प्राप्त होता है।

सोरठा :

इसके प्रथम और तृतीय अर्थात् सम चरणों में ११-११ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ अर्थात् विषम चरणों में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के अंत में लघु रहता है और सम चरणों के आदि में जगण नहीं आता। सामान्यत: पहले, तीसरे चरण में ही तुक मिलती है, दूसरे और चौथे में नहीं। हिन्दी में सूर, तुलसी, कबीर, जायसी बिहारी आदि ने सोरठों की रचना की है।

रहीम के काव्य में सोरठे का प्रयोग अधिक है। श्रृंगार के छः सोरठे रहीम रत्नावली में मिलते हैं। उन्होंने नीति संबंधी सोरठे भी लिखे हैं। उदा-

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तँह रस नहीं।।[४१]

रहीम कहते हैं, "जहाँ पर गाँठ अर्थात् व्यक्ति के मन में मालिन्य होता है वहाँ रस मतलब प्रेम नहीं रहता। यही इस संसार की रीति है। मैंने गन्ने में रस देखा, परंतु जहाँ गाँठ है वहाँ रस नहीं था। अर्थात् मन में एक बार नफरत निर्माण होने से वहाँ प्रेम भाव नहीं दिखाई देता।"

<u>दोहा :</u>

हिन्दी में दोहा छन्द की संख्या अधिक है। दोहे का आरंभ कब हुआ यह कहा नहीं जा सकता है परंतु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि-

" दोहा अपभ्रंश का लाडला छन्द है।"[४२]

दोहे की १३, ११ मात्राओं के मानक रूप को स्थापित करने में दो ही कवियों का विशेष हाथ है, तुलसी और रहीम। रहीम के सभी दोहे टंकसाली है। रहीम ने दोहे के रूप को कुछ ऐसा निखार दिया है कि उसकी परंपरागत अव्यवस्थाओं के प्रति लेखकों में जागरूकता निर्माण हुई है। रहीम ने दोहे के बारेमें कमाल हासिल करते हुए दोहे की उपमा नट के उस छोटे कुण्डल से दी थी जिसमें वह अपने सारे शरीर को दृढता, शीघ्रता एवं सुन्दरता के साथ बाँध लेता है। उदा -

दीरघ दोहा अरथ को, आखर थोरे आँहि।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढि जाहि।[४३]

रहीम कहते हैं, "दोहे में अक्षर थोडे होते हैं परंतु उसका अर्थ बहुत ही अधिक होता है। खेल दिखानेवाला नट अपना पूरे आकार का शरीर समेट कर फिर कूद कर छोटे से गोले में से निकल जाता है।"

दोहा रहीम - काव्य का प्रधान छन्द है। कवित्तों, सवैयों तथा अष्टक आदि के फुटकर वृत्तों का योग पचास के लगभग है। बरवौं की संख्या अवश्य चौगुनी से अधिक है। नायिका भेद के ११४ तथा फुटकर बरवों की संख्या १०५ मिला देने पर योग २१९ रहता है। जब कि फुटकर दोहों की संख्या लगभग सवा चार सौ है। दोहा ही रहीम द्वारा प्रयुक्त छन्द है। विषय की दृष्टि से जाना जाय तो भक्ति, वैराग्य तथा श्रृंगारादि की अपेक्षा अधिकता नीति के दोहों की हैं।

सतसई :

सतसई का अर्थ है - सात सौ मुक्तक छन्दों का संग्रह। अपने आस्वाद अथवा वक्तव्य - बोध के लिए पूर्वापर छन्द निरपेक्ष रचना को मुक्तक कहते हैं। रहीम के पहले किसीने सतसई नहीं लिखी। बिहारी, मतिराम की सतसई बाद की है। रहीम ने ही हिन्दी साहित्य में सतसई - परंपरा निर्माण की, परंतु उनकी यह सतसई प्राप्त नहीं होती है।

रहीम ने अपने मन के भावों को प्रकट करने के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। इसमें वे सफल बन गए हैं। उनका जितना भी साहित्य प्राप्त है, उसमें होनेवाले भाव, विचार, सौन्दर्य को रहीम ने अच्छी तरह से व्यक्त किया है। इसी कारण उनका काव्य सामान्य से सामान्य आदमी भी आसानी से समझ सकता है।

रहीम के काव्य में शब्द - शक्ति तथा मुहावरे :

शब्द शक्तियों की संख्या में संस्कृत विद्वानों में मतभेद है। फिर भी आजकल शब्द की तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं - अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना।

अभिधा शक्ति :

अभिधा का शाब्दिक अर्थ है - नाम। एकाध वस्तु का नाम लेने से उसका निश्चित अर्थ, व्यापार, गुण अथवा आकृति सामने आ जाती है। रहीम के काव्य में लक्षणा व्यंजना के रूप प्राप्त होते हैं, परंतु वे अभिधा के ही कवि हैं। रहीम का पूरा काव्य और नीति - काव्य अधिकांश रूप में अभिधा व्यापार पर आधारित है। उसका सरल और सीधा अर्थ समझ में आता है। उदा-

अमर बेल बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि।।[४४]

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

रहीम कहते हैं, "बिना जड की अमरबेल को पोषित करने वाले प्रभू को छोडकर हे मनुष्य: किसके आश्रय की खोज करता फिरता है ? हमारे प्रभू इतने दयालु और शक्तिवान है कि उन्हें छोडकर कहाँ जाय ? उनकी बराबरी करनेवाला यहाँ कोई नहीं है।"

उपर्युक्त दोहा आध्यात्म नीति का है। इसमें "मूल", "प्रभु" इ. शब्द अखंड रूढ, प्रतिपालत शब्द प्रकृति प्रत्ययादि के संयोग के कारण यौगिक तथा "अमर बेलि" एक विशिष्ट लता के अर्थ में रूढ हुआ, योग - रूढ शब्द है। इस अभिधा - प्रधान दोहे में रहीम ने प्रभु विश्वास का सन्देश दिया है। दूसरा उदा. इस प्रकार है -

> जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
> चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।[४५]

रहीम कहते हैं, "जिन व्यक्तियों का स्वभाव अच्छा होता है, उन लोगोंपर बुरी संगति का प्रभाव नहीं पडता। जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष को जहरीले सर्प लिपटे रहते हैं, परंतु सर्प के विष का प्रभाव चन्दन के वृक्ष पर नहीं होता है।"

यहाँ उत्तम, विष, चन्दन ये रूढ शब्द है। ऐसे ही शब्दों का प्रयोग रहीम की भाषा-शैली का प्रतिनिधि गुण है। कुसंग, प्रकृति आदि शब्द यौगिक है और अम्बुज योग रूढि है, जिसका अर्थ केवल कमल में रूढ हो गया है। वैसे भुजंग शब्द भी अनेकार्थी है। परंतु रहीम अपने शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार करते हैं कि वे प्राय: अपने रूढ अर्थ में सीमित रहते हैं। पाठकों को कोष या व्याकरण देखना नहीं पडता है। इतना सीधा अर्थ उनके काव्य में से निकलता है।

लक्षणा शक्ति :

रहीम के काव्य में लक्षणा शक्ति का भी प्रयोग दिखाई देता है। मुख्यार्थ का बाध होने पर, उसके साथ संबंध रखनेवाला, रूढि अथवा प्रयोजन

विशेष से जो अन्य अर्थ लक्षित होता है, वह आरोपित व्यापार लक्षणा कहलाता है। रहीम के काव्य में लक्षणा के उदा. इस प्रकार है -

मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय।।[४६]

उपर्युक्त दोहे में कवि ने श्यामा (राधिका) के उर पर फल लगने की और श्याम के मन में उन्हें देखकर फूला न समाने की बात कही गयी है, परन्तु स्त्री - पुरुषों के हृदय पर फल -फूल नहीं उग सकते। अर्थात् इसका अर्थ इस प्रकार है कि, सुमन्नत उरोजा तरुणी राधिका को देखकर और कृष्ण के मन ही मन प्रसन्न होने की अर्थात् मन में फूला न समाने की बात कही गयी है।

रहीम के प्रेमकाव्य में लक्षणा का प्रयोग अधिक हुआ है। उनके नायिका भेद में तो लक्षणा के प्राय: सभी प्रकारों के उदाहरण विपुल मात्रा में विधमान हैं। उनके नीति - काव्य में भी लक्षणा का प्रयोग हुआ है। रहीम के काव्य में रूढा लक्षणा, प्रयोजनवती लक्षणा, सारोपा, गौणी लक्षणा के उदाहरण मिलते हैं। सुन्दरियों के नेत्र - बाणों से सुरक्षित रहने का एकमात्र उपाय वे भगवान के चरण-कमलों की ओट समझते हैं। उदा -

कहि रहीम जग मारियो, नैन - बान की चोट।
भगत भगत कोऊ बचि गये, चरन कमल की ओट।।[४७]

रहीम कहते हैं, "यह संसार स्त्री के नेत्र रूपी बाणों की चोट से मर गया, सिर्फ भगवान के कुछ ऐसे भक्त बच गये, जिन्होंने भगवान के चरण रूपी कमलों की ओट ले ली थी।"

इतना ही नहीं दृग रूपी दो - दो दीपकों के जलते हुए भी स्नेह को छुपा सकना रहीम की सम्मति में असंभव है। उदा -

कहि रहीम इक दीप तें प्रकट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय।।[४८]

रहीम कहते हैं, "एक ही दीपक से सभी ओर प्रकाश छा जाता है फिर शरीर में स्नेह कैसे छिप सकता है ? क्यों कि यहाँ तो नेत्ररूपी दो दीपक जल रहे हैं।"

रहीम ने कुछ दोहों में केवल उपमान को कहकर ही अपना अभिप्राय दिया है। वे शरीर को कागज के पुतले जैसा क्षणिक मानते हैं, जो केवल मृत्युरूपी रात्रि की नमी पाते ही घुल जाता है। उदा -

कागज को सो पूतरा, सहजहिं में घुल जाय।
रहिमन यह अचरज, लखो सोड खैंचत बाय।। [४९]

रहीम ने सारोपा शुध्दा प्रोयजनवती लक्षणा के भी उदा. लिखे हैं। जैसे-

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछौर।
हलुकन को उड़िजान दै, गरूए राखि बटोर।। [५०]

रहीम कहते हैं, "मनुष्य का शरीर सूप के समान है। इस सूप से संसार भली भाँति फटक कर देख लेना चाहिए। जिस प्रकार सूप भूसा आदि हल्की वस्तुओं को छोड देता है और अन्न आदि भारी, उपयुक्त वस्तुओं को रख लेता है उसी प्रकार मनुष्य को भी संसार से हल्कि, तुच्छ बातों को छोड देना चाहिए और अच्छी बातों को रख लेना चाहिए।"

उपर्युक्त दोहे में उपमान और उपमेय दोनों ही विधमान होने के कारण सारोपा लक्षणा है।

रहीम के दोहे में लक्षण लक्षणा के उदा. भी मिलते हैं। उदा -

मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहि जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय।। [५१]

उपर्युक्त दोहे में रहीम ने कामदेव रूपी माली की उपज के बारेमें कहा है। यहाँ फूल श्याम के हृदय में उपजते हैं अर्थात् काम का आनन्द श्याम के हृदय में निर्माण होता है और फल श्यामा (राधिका) के हृदय पर लगता है अर्थात् श्याम के मन में कामभावना निर्माण करने वाले उरोजों का उदय शामा (राधिका)के वक्षस्थल पर हुआ है।

रहीम के काव्य में उपादान लक्षणा के उदाहरण मिलते हैं। इसका अर्थ है कि अपने अर्थ को न त्यागकर उससे संबंध रहनेवाली। लक्षणा का यह रूप रहीम के काव्य में सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। इसके उदाहरण ऐसे दिये हैं कि उससे सरलतापूर्वक लाक्षणिकता का आस्वाद मिलकर वास्तविक प्रयोजन तक पहुँच जाते हैं। जैसे -

टूटे स्वजन मनाईए, जो टूटें सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार।।[५२]

रहीम कहते हैं, "प्रिय व्यक्ति सौ बार रूठे तो उस रूठे हुए प्रिय व्यक्ति को लाख बार मनाना चाहिए अगर मुल्यवान मोतियों का हार टूट जाय तो मोतियों को बार बार धागे में पिरो लेना चाहिए। उसी प्रकार प्रिय व्यक्ति को बार - बार मनाना चाहिए।"

उपर्युक्त दोहे में टूटने का अर्थ है पृथक होना, नाराज हो जाना। इन बातों से स्पष्ट होता है कि रहीम का काव्य लाक्षणिक प्रयोगों से भरपूर है।

व्यंजना :

अभिधा और लक्षणा शक्तियों का क्षेत्र सीमित है। इन दो शक्ति के बाद तीसरी शक्ति का सहारा लिया जाय तो वह है व्यंजना। जिस अर्थ को अभिधा या लक्षणा नहीं खोल पाती है, वहाँ व्यंजना उसे निदर्शित करती है। व्यजना का अर्थ है विशिष्ट अंजन। व्यंजना शक्ति से काव्य में होनेवाला सूक्ष्म अर्थ सौन्दर्य प्रगट हो जाता है।

व्यंजना के दो प्रमुख भेद हैं – शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। शाब्दी व्यंजना शब्द पर आधारित होती है, तो आर्थी व्यंजना अर्थ पर अवलंबित होती है। शाब्दी व्यंजना भाषा की निजी सौन्दर्य – संपत्ति की और कवि के शब्द –चयन कौशल की अपेक्षा रखती है।

रहीम के काव्य में शाब्दी व्यंजना के सुंदर उदाहरण मिलते हैं उदा –

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।[५३]

उपर्युक्त दोहे में लक्ष्मी का चांचल्य वर्णित है। फिर भी इसमें व्यंजना है, जो वृध्द –विवाह के दुर्गुण व्यक्त करती है। यह पुरुष – पुरातन शब्द के विशेष प्रयोग के कारण संभव हुआ है। अत: यह शब्दाधरित होने के कारण यहाँ व्यंजना शाब्दी है आर्थी नहीं। शाब्दी व्यंजना का दूसरा उदा. इस प्रकार है –

कह रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत – भगत कोउ बचि गयो, चरन कमल की ओट।।[५४]

? उपर्युक्त दोहे में भगत और गुन आदि दो अर्थ रखने वाले शब्दों के प्रयोग के कारण शाब्दी व्यंजना है शाब्दी व्यंजना के अभिधा और लक्षणा के आधार पर दो भेद होते हैं, जिन्हें अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना तथा लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना कहा जाता है।

रहीम के दोहों में व्यंजना व्यापार अभिधा पर भी आधारित है। उदा–

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हू, साँप सहज धरि खाय।।[५५]

रहीम कहते हैं, "लाख भलाई करो, लेकिन दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोडते। जिस प्रकार मधुर गीत सुनकर और दूध पीकर भी साँप अपना मारने का स्वभाव नहीं छोडता।"

शाब्दी व्यंजना का दूसरा भेद है लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना। मुख्य अर्थ के बाधित होने पर किसी प्रयोजन विशेष के कारण लाक्षणिक शब्दों पर आधारित ध्वन्यार्थ की प्रतीति कराने वाली शब्द शक्ति को लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना कहते हैं। उदा-

गुन ते लेत रहीम जल, सलिल कूप ते काढि।
कूपँहु ते कहूँ होत है, मन काहू को गाढि।।[५८]

रहीम कहते हैं, "जब लोग रस्सी की सहायता से कुएँ में से जल निकाल लेते हैं तो दूसरों के मन के भाव भी हम जान सकते हैं, क्यों कि किसी का मन कुएँ से भी बढ कर गहरा नहीं हो सकता। अर्थात् उस व्यक्ति के मन के भाव जान सकते हैं।"

उपर्युक्त दोहे में मानवीय गुण और कौशल्य पर व्यंग्य है। साथ ही अनेकार्थक शब्द गुन के प्रयोग के कारण उक्त दोहे में शाब्दी व्यजंना सरलता से देखी जाती है।

रहीम के काव्य में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन तीनों शक्तियों का जितना सूक्ष्म और शास्त्रसिध्द विनियोग हुआ है, उतना अन्यान्य नीति कवियों में दुर्लभ दिखाई देता है। नीति जैसे विषय में शब्दों का ऐसा नपा-तुला और सशक्त प्रयोग रहीम के उत्कृष्ट काव्य - कौशल्य का प्रमाण है।

रहीम के नीतिकाव्य में गुण और उसका सौन्दर्य :

गुण, सामान्य जन-जीवन का परिचित शब्द है, किन्तु काव्य - शास्त्र में लोक के सामान्य अर्थ से सम्बध्द रहता हुआ भी वह अपना एक विशिष्ट अर्थ रखता है। शब्द और अर्थ के वे धर्म हैं जो काव्य को शोभा संपन्न करते हैं, उन्हें गुण कहा जाता है। जिस प्रकार उदारता, प्रसन्नता तथा शौर्य आदि गुण मानवता के विकास और आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक हैं, उसी प्रकार काव्य में रससाधना के लिए अभिव्यक्ति - क्षमता संबंधी जिन विशेष तत्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें ही गुण कहा जाता है। गुण काव्य के नित्य धर्म है।

बुण की संख्या के बारेमें भी आचार्यों में विवाद है। परंतु मम्मट ने गुणों की संखया तीन मानी है। जैसे - माधुर्य, ओज और प्रसाद आदि।

रहीम के काव्य में माधुर्य :

माधुर्य शब्द का अर्थ है मधुरता। जहाँ तक "ट" वर्ग तथा संयुक्ताक्षरों का संबंध है, वह भी उनके काव्य में नाम-मात्र को ही आये हैं कहीं-कहीं तो यह प्रयोग कुछ ऐसे कौशल और चमत्कार से हुआ है कि वे अपनी स्वाभाविक कर्ण कटुता छोडकर प्रीति और मिठास उत्पन्न करते हैं। उदा -

काह करौ बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाँह।।[५७]

रहीम कहते हैं, "अगर प्रिय अपने पास नहीं है तो स्वर्ग के मिलने से तथा कल्पवृक्ष की छाया में बैठने क्या फायदा? परंतु प्रियतम की बाँहें गले में हों तो ढाक का वृक्ष भी सुहावना लगेगा।"

और भी इस प्रकार के दोहे अत्यंत प्रसिध्द हैं। रस की दृष्टी से रहीम का काव्य शांत और शृंगार रस से संबंधित है। रसौचित्य के कारण भी उनके काव्य का गुण माधुर्य ही है।

रहीम के काव्य में ओज गुण :

ओज का अर्थ है जहाँ पर चित्त प्रदीप्त होता है। इसी कारण इसकी स्थिति वीर रस, बीभत्स रस तथा रौद्र रस में मानी जाती है। ओज गुण में ट, ठ, ड, ढ आदि का प्रयोग और दीर्घ समासान्त क्लिष्ट संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है। वैसे रहीम के काव्य में ओज गुण का अभाव है। यह रहीम जैसे वीर सेनापति तथा ओजस्वी व्यक्ति के स्वभाव के विपरीत है। उनके पूरे काव्य में थोडे ही उदाहरण ओज गुण के अपवाद स्वरूप में प्राप्त होते हैं। उदा-

अंड न बौड रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती - ढक्का, कुल्हडिन, सहैं ते तरूवर आन।।[५८]

रहीम कहते हैं, हे एरंड। तू अपने चिकने पत्तों को देखकर धोखे में मत पडना, क्यों कि तू अपने को तरूवर समझने की भूल कर रहे हो। तरूवर तो द दूसरे ही होते हैं जो हाथियों के आघात और कुल्हाडियों की चोट सहन करते हैं।"

रहीम जैसे ओजस्वी योध्दा की काव्यकृतियों का ओज की दृष्टि से अध्ययन करने पर भी निराश होना पडता है। कारण यह होगा कि वे श्रृंगार और शान्त रस के कवि हैं, वीर रौद्रादि के नहीं.।

रहीम के काव्य में प्रसाद गुण :

प्रसाद का अर्थ है प्रसन्नता। प्रसाद व्याप्ति का गुण है। इसका विस्तार सभी रसों में है। परंतु गण के संदर्भ में इसका अभिप्राय सरलता से संबंधित है।

रहीम का समग्र काव्य प्रसाद गुण का काव्य है। सरल, स्वच्छ और सर्वग्राहय है। उनका काव्य पढते समय न कोश की आवश्यकता होती है , न संदर्भ ग्रंथों की। प्रसाद गुण के कारण ही पाठक रहीम का काव्य गुनगुनाते हैं और उन्हें दोहराते हैं। प्रसाद गुण के कारण ही रहीम का काव्य अनपढ जनसमाज तक पहुँचा है। उदा -

> रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
> हित अनहित या जगत में, जान परत सब कोय।।[५९]

रहीम कहते हैं, " अगर आपत्ति कुछ समय की हो तो वह आपत्ति भी अच्छी लगती है, क्यों कि संकट में हम सब कुछ समझ जाते हैं इस संसार में कौन भला करनेवाला है और बुरा करनेवाला है यह भी हम समझते हैं।"

नीति, श्रृंगार, वैराग्य और भक्ति किसी भी विषय का दोहा लिया जाय तो वह प्रसाद गुण से भरा मिलता है। रहीम के नीति - काव्य में ओज का अभाव, माधर्य की पर्याप्त विधमानता और प्रसाद का सर्वत्र प्रभाव दिखाई देता है।

रहीम के नीति - काव्य में वृत्ति और रीति का प्रयोग :

वैसे वृत्ति स भिन्नार्थक शब्द है जैसे स्वभाव, आचरण, जीविका आदि। काव्य-शास्त्र में इसका संबंध अंतिम अर्थात् रचना - शैली से है। रीति का भी यही अर्थ होता है। इसीलिए रीति और वृत्ति को सामान्यतया एक ही माना जाता है। वृत्ति को सामान्यतया एक ही माना जाता है। वृत्तिका संबंध मनोदशा से अधिक है, और रीति का वर्ण संघटना से। ये दोनों ही तत्त्व गुण विवेचन के आधार हैं।

रहीम का अधिकतर काव्य माधुर्य एवं प्रसाद गुण से भरा है। असमें कोमला वृत्ति की प्रधानता है। वृत्ति के जो उदाहरण हैं वे ही रीति के हैं। रीतियाँ तीन हैं - वैदर्भी, गौडी और पांचाली। परंतु रहीम का काव्य प्रधानत: वैदर्भी अर्थात् समास रहित रीति का ही काव्य है। उदा -

रहिमन मनहि लगाय के, देखि लेउ किन कोय।
नर को बसि करिबो कहा, नारायण बसि होय।।[६०]

रहीम कहते हैं, "कुछ काम करना भी मनुष्य के हाथ में नहीं है, वरना भगवान के हाथ में हैं। अगर विश्वास नहीं है तो किसी से मन लगा कर देख लो।"

रहीम का काव्य सहज भाव से सामान्य पाठक पढते हैं और उनके काव्य से आनंद और प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

रहीम के नीति - काव्य में मुहावरे - लोकोक्तियाँ :

मनुष्य अपनी भाषा को सशक्त करता आया है इसके लिए वह नाना शब्द रूपों एवं पद - प्रयोगों का व्यवहार करता आया है। कई सशक्त शब्द-प्रयोग प्रचलित होने के कारण निश्चित अर्थों में रूढ हो गए। इन्हीं प्रयोगों ने लोकोक्तियों और मुहावरों का रूप ले लिया है।

KOLHAPUR

रहीम ने जब भी अवसर मिला मुहावरों का प्रयोग किया है। " वे सामान्य मुहावरे के प्रयोग से गंभीर तथ्यों की अभिव्यक्ति करने में सिध्दहस्त थे।"[६१] सामान्य प्रयोग द्वारा ही वे ऐसी कुछ गंभीर बात कह जाते है कि उसके संयोग से मुहावरे की शोभा बढ़ जाती। और उसका तथ्य स्पष्ट हो जाता है। उदा -

रहिमन ठठरी धूर की, रही पवन से पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अन्त धुरि की धूरि।।[६२]

उपर्युक्त दोहे में रहीम ने शरीर को धूलि की गठरी के समान कहा है। इसमें हवा भरी हुई है जब भगवान द्वारा बाँधी हुई प्राण की गाँठ खुल जाती है तब यह शरीर धूल के रूप में पडा रहता है। शरीर प्राणहीन होने के कारण मिट्टी से अधिक नहीं रहता।

उपर्युक्त दोहे में रहीम ने शरीर की क्षणभंगुरता का वर्णन किया है। रहीम ने शरीर को धूर की गठरी कहा है। बाहर जब तक पवन चल रहा है, तब तक यह धूरी सुरक्षित रहती है। जैसे ही गाँठ खुल जायेगी धूल उड जायेगी। इस प्रकार अगर युक्ति, तर्क और दुरदर्शिता से काम न लिया गया तो जीवन व्यर्थ है। इस गंभीर भाव को समझाने के लिए रहीम ने "अन्त धूर की धूर" इस मुहावरे का प्रयोग किया है।

इतना ही नहीं रहीम के दोहों में एक से अधिक मुहावरों का प्रयोग भी मिलता है। विषय की आवश्यकता और अभिव्यक्ति कौशल ही ऐसे उदाहरणों में दिखाई देते हैं। उदा -

रहिमन करि सम्बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दांत दिखावत दीन हुई, चलत घिसावत नाक।।[६३]

उपर्युक्त दोहे में "दांत दिखाना," "धाक मानना", "नाक घिसाना" इन तीन मुहावरों का प्रयोग किया है। इससे हाथी की दैन्यावस्था का पता चलता है। यहाँ हाथी सूंड नीची करके तथा पृथ्वी को सूँघते चलता है। इस वर्णन

में रहीम की अस्तिकता देखने को मिलती है और वे किसी दृश्य विशेष से अपने ही अनुकूल अर्थ लगाते हैं ऐसा मालूम होता है।

रहीम के नीति – काव्य में दोहे ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें मुहावरों ही मुहावरों का प्रयोग है। परंतु ये प्रयोग न विषय – सौन्दर्य की दृष्टि से अनुचित हैं और न अभिव्यंजना – कौशल की दृष्टि से। उदा –

एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय।।[६४]

उपर्युक्त दोहे में " एक का साधना", "सब का साधना", "मूल सींचना", "अधा कर फूलना – फलना" आदि स्वाभाविक मुहावरों का प्रयोग हुआ है। रहीम के सभी मुहावरे सहज, तरल और विषय के अनुकूल हैं।

कई स्थानों पर रहीम ने ऐसे प्रयोग किए हैं, जिन्हें मुहावरों के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है। ऐसे प्रयोगों में वे सभी गुण हैं, जो मुहावरे तथा लोकोक्ति में हैं। उदा –

थोथे बार क्वाँर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करैं पाछिली बात।।[६५]

उपर्युक्त दोहा थोथे बादर क्वार के – अधजल गगरी छलकत जाय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

लोकोक्तियों, मुहावरों और उनसे मिलते – जुलते शब्द प्रयोगों के अतिरिक्त रहीम ने बहुत कुछ दोहे, मुहावरों की विषय वस्तु से प्रेरित होकर लिखें हैं। उदा–

सौदा करो सौ करि चलो, रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पै हो नहीं, दूर जात है बाट।।[६६]

इन मुहावरों से स्पष्ट होता है कि रहीम का मुहावरा प्रेम सहज स्वाभाविक था। उन्होंने अपने भाव, विषय एवं वर्णन - कौशल के अनुरूप ही प्रचलित मुहावरों का प्रचुर प्रयोग किया है। ये मुहावरे उनके लोक-ज्ञान, अनुभव बाहुल्य एवं सामाजिक संपर्क से प्रतीत होते हैं। इनकी लघुता एवं उपयुक्तता ने इनके प्रभाव को और भी बढा दिया है। उनके प्रमुख मुहावरे हैं - काम आना, ताड की छाँव बैठना, फजीहत होना, कसौटी कसना, मन निठुर करना, जहान का जानना अन्त पछिताना, बलि बलि जाना, घास बेचना, चकोर का आग पचाना, अनहोनी होना, रसोई तपना, धीर धरना, गाढे दिन की मित्रता, नैनों मे बसना, चाल सीधी होना, गति अपने हाथ में होना, बडा पेट होना लाख टका मोल होना, भाड झोंकना, भाटी का दहना, एकरूप होना, मन का बिकना, प्राणों की बाजी रखना, रूखा होना, गहरी छाँह होना, कालीख लगना, धाक मानना, पत रखना, पीठ दिखाना, जूते खाना, मन लगाना, कूच करना, जल जाना, अपने हाथ होना, आठों याम कूच का नगारा बजना, गाढे दिन की मित्रता, सौ बार टूटना आदि।

रहीम के अधिक दोहे मुहावरेदार भाषा में लिखे गये हैं। लोकोक्ति की संख्या मुहावरों से कम है। मुहावरे अथवा लोकोक्तियाँ जो भी हैं, सरल, सहज, स्वाभाविक और विषयानुकूल हैं।

रहीम के नीतिकाव्य में कल्पना एवं ध्वनि :

मनुष्य की प्रत्येक कृति उसकी कल्पना का पररूप होती है। सिधान्त, भाव और कला उसके निर्माता की मूल कल्पना का पररूप है। इसी कारण कल्पना का तात्त्विक विवेचन, कला साहित्य, मनोविज्ञान और सौन्दर्यशास्त्र में होता आया है।

कल्पना पर क्रोचे ने सौन्दर्यशास्त्र के प्रसंग पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने सौन्दर्यास्वादन को कल्पना - व्यापार का अनिवार्य अंग माना है।

कल्पना एक नैसर्गिक मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा चित्रों भावों एवं बिम्बों का निर्माण किया जाता है। परंतु कल्पना का सर्वाधिक प्रयोग कला - क्षेत्र में होता है। "कवि-अपने कथानक - निर्माण, परिस्थिति - चित्रण, भाव-निरूपण, चरित्र - उन्मीलन, अलंकार - संयोजन, शैली - संस्थापन एवं रस- निष्पादन आदि सभी क्षेत्रों में कल्पना का आश्रय ग्रहण करता है।"[६७]

रहीम के नीतिकाव्य में कल्पना का विभिन्न प्रकार से प्रयोग हुआ है। उनके नीति - कथनों में जो एक विशेष रमणीयता एवं प्रभावोत्पादकता है, उसका कारण उनके सफल कल्पना - विधान है। कहीं पर उनकी कल्पना स्थूल सिध्दान्तों को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करती है, तो कहीं पर निरस कथनों को सरस बनाती है। इसी के आधार पर ही अरुचिकर को रुचिकर बनाकर पाठकों के सामने रखा है। जन - जीवन और लोकानुभव की सामान्य से सामान्य घटना द्वारा बडी से बडी नीति का प्रतिपादन रहीम के कल्पना विधान का कमाल है। उनकी कल्पना अकृत्रिम और सर्वसुलभ है।

रहीम कवि - हृदयी थे। उनकी कल्पना प्रवणता के दर्शन उनके दोहों में होते हैं। उदा -

> नाद रीझ तन तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
> ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत।[६८]

रहीम कहते हैं, " संगीत पर मुग्ध होकर हरिण अपना शरीर अर्पित कर देता है, मुग्ध होकर मनुष्य अपना धन ही नहीं सब कुछ न्यौछावर कर देता है। परंतु वे लोग पशु से भी बढकर हैं जो रीझने पर भी कुछ नहीं देते।"

उपर्युक्त दोहे में मृग का तंत्री नाद पर रीझना और पकडा जना प्रचलित है, परंतु इस प्रसंग पर कल्पना की है कि जो रीझने पर भी कुछ नहीं

देते, वे पशु तो क्या पशु से भी गये गुजरे हैं, यह रहीम की मौलिकता है। उन्होंने मन के जलने के प्रसंग में एक दोहा लिखा है कि जलने पर वस्तु राख बन जाती है। राख को जिस वस्तु से लगा दिया जाय वह शुष्क हो जाती है। रहीम ने अपने मन को जिससे भी लगाया वही सूख गया, रूखा हो गया, नीरस बनगया, बेवफाई कर गया अत: उनकी कल्पना है कि उनका मन जल कर राख बन चुका है, भस्म बना है। उदा -

याते ज्यान्यो मन भयो, जरि - बरि भस्म बलाय।
रहिमन जाहि लगाइए, सो रूखो ह्वै जाय।।[६९]

रहीम का नीतिकाव्य तो सरल कल्पनाओं का भंडार है। केले के पत्ते के हिलने में, रस से डोलने की कल्पना, बुढापे के लिए बाजू टूटे बाज की कल्पना नारी के पेट से दीपक को बुझता देख, असमय पडने पर मित्र के शत्रु बन जाने की कल्पना, प्यादे के फरजी बनने पर टेढी चाल के कारण ओछे स्वभाव की कल्पना, दूध फटने से बात के बिगडने की कल्पना, मथने पर दही के सब तत्वों के अलग हो जाने पर केवल माखन के तिरता रहने से, मुसीबत पडने पर भी सच्चे मित्र के डटे रहने की कल्पना आदि सभी कल्पनायें स्वभाविक हैं।

कवि शब्दों के आधार पर कविता निर्माण करता है। जितना अधिक शब्द - भण्डार उतना उसका सुन्दर प्रयोग करके उत्तम काव्य तयार होता है। कुशल कवि अपना एक - एक शब्द माला के माणिक की भाँति पिरोते हैं जिसे निकालना चाहनेसे नहीं निकाला जा सकता। रहीम का काव्य उत्तम शब्दों का भंडार है। उदा -

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून।।[७०]

रहीम कहते हैं, " मनुष्य को पानी (इज्जत) रखना चाहिए क्यों कि पानी के बिना सब सूना हो जाता है अर्थात् व्यर्थ होता है। पानी चले जाने से मूल्य नहीं रहता। जैसे अगर मोती का पानी (उसकी चमक) चला जाने से वह बेकार होता है। उसी प्रकार मनुष्य से पानी (प्रतीष्ठा, इज्जत) चला जाने से वह कहीं का भी नहीं रहता। ऐसे ही चूने में से पानी जाता है तो चूना बेकार होता है। "

रहीम ने प्रकृति से भी उदाहरण बनाकर अपनी नैतिक कल्पना को व्यक्त किया है। जैसे मानसरोवर में बिहार करने वाले हंस से एकनिष्ठ प्रेम की, अपनी गर्दन को फाँसी के फंदे में डालकर घडे को दूसरों की प्यास बुझाते देख, परोपकार की कल्पना, ऊख के पोरुओं की गाँठ को रसहीन देखकर, हृदय में गाँठ पडते ही प्रेम की समाप्ति की कल्पना आदि।

ध्वनि और रहीम का काव्य :

आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वनि के अंतर्गत रस, अलंकारादि सभी को ध्वनि में समाहित किया था। क्यों कि ध्वनि के तीन भेद हैं - वस्तु ध्वनि, रस ध्वनि, अलंकार ध्वनि, । परंतु मोटे तौर पर ध्वनि के दो भेद हैं - लक्षणा मूला ध्वनि और अभिधा मूला ध्वनि।

रहीम के काव्य में ध्वनि के सब उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदा -

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय।। ७१

रहीम कहते हैं, "कमला (लक्ष्मी) कभी स्थिर नहीं रहती अर्थात् धन स्थायी नहीं होता है। धन किसी के पास रहता है तो कभी किसी अन्य स्थान पर। वृध्द विष्णु की पत्नी होने के कारण भला कमला क्यों न चंचला होगी ? जिस प्रकार वृध्द की पत्नी चंचल स्वभाव की होती है उसी प्रकार लक्ष्मी भी चंचल स्वभाव की होती है।"

उपर्युक्त दोहे में प्रथम पंक्ति का वाच्यार्थ धन की अस्थिरता है। परंतु इसका ध्वन्यार्थ है कि संसार इतना मूढ है कि यह जानते हुए भी कि धन स्थायी वस्तु नहीं तब भी उसके संग्रह में जीवनभर लगा रहता है। इसका अगला भाव है कि जानबूझकर अर्थ संग्रह के चक्कर में जीवन गँवा देना बहुत ही मूर्खता है और इससे भी अर्थ निकलता है कि अस्थिर धन-संग्रह के स्थान पर जीवन का उपयोग धर्म, पुण्यादि स्थिर महत्व की वस्तुओं में करना चाहिए।

दूसरी पंक्ति में व्यंग्यार्थ और भी तीखा है। क्यों कि पुरुष पुरातन अर्थात् बूढे की वधु अर्थात युवती का चंचल होना स्वाभाविक है। इसलिए आयु से गिरे हुए पुरुषों को नवयुवतियों से विवाह करते समय सोचना चाहिए। नहीं तो पत्नी चंचल बनकर कुल मर्यादा आदि को समाप्त कर देगी। इसका स्पष्ट अर्थ है कि बूढों को युवतियों से विवाह नहीं करना चाहिए।

रहीम के काव्य में ध्वनि के सभी भेदों का प्रयोग हो चुका है। ध्वनि का सूक्ष्म सौन्दर्य उत्तम काव्य की स्वाभाविक विशेषता है और रहीम का काव्य इस पर खरा उतरता है।

निष्कर्ष :

रहीम के नीति - काव्य के साहित्यिक सौंदर्य में शैली, अलंकार, छंद, रीति, कल्पना, ध्वनि आदि का प्रचुर मात्रा में उपयोग हुआ है। उनके काव्य की भाषा अत्यंत प्रौढ और सक्षम है। उनका ब्रज और अवधी भाषा पर समान अधिकार है। खडी बोली के प्रयोगों की दृष्टि से भी उनका काव्य अध्ययन-उपयोगी सिध्द होता है।

रहीम नेअपने नीति - कथन के लिए अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। उनकी सर्वाधिक प्रिय शैली सुबोध शैली है। सिर्फ सुबोधता ही उनकी शैली का गुण नहीं, सुबोधता के साथ स्वाभाविक अलंकरण उक्तिवैचित्र्य शैलीवैविध्य का प्रयोग हुआ है।

रहीम जैसे सहज - स्वाभाविक शैली के कवि हैं, वैसे उनके काव्य में अलंकार - सौन्दर्य भी कम नहीं है। उनके काव्य में सहजता से अलंकारों का उपयोग किया है। किसी अलंकार को बरबस ठूँसने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया है और नहीं किसी अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए किसी छन्द की रचना की है। उनके सभी अलंकार स्वाभाविक हैं।

रहीम के नीतिकाव्य का अध्ययन करने से मालूम होता है कि रहीम के नीति - काव्य में शब्द शक्तियों का जितना सूक्ष्म प्रयोग हुआ है वैसा अन्य कवियों की कृतियों में दुर्लभ है। नीति जैसे विषय में शब्दों का ऐसा नपा - तुला और सशक्त प्रयोग रहीम के उत्कृष्ट काव्य - कौशल का प्रमाण है।

रहीम ने अपने काव्य में लोकोक्तियाँ और मुहावरों का उपयोग अधिक किया है। उनके अधिक दोहे मुहावरेदार भाषा में लिख हैं। एक से अधिक मुहावरे एक ही दोहे में प्राप्त होते हैं। परंतु लोकोक्तियों की संख्या उनके काव्य में कम है। उनके काव्य के मुहावरे सरल, स्वाभाविक और विषयानुकूल बन पडे हैं।

रहीम ने अपने काव्य में कल्पना और ध्वनि का भी उपयोग सहजता से किया है। नीति जैसे सीमित क्षेत्र में भी रहीम ने कल्पना का विभिन्नता के लिए प्रयोग किया है। वैसे ही ध्वनि की कसौटी पर रहीम का नीति काव्य खरा उतरता है। ध्वनि के अधिक उदाहरण श्रृंगार के क्षेत्र में प्राप्त होते हैं, परंतु रहीम के नीति - काव्य में ध्वनि के उदाहरण मिलते हैं। यह उनके काव्य की विशेषता है। सच बात यह है कि ध्वनि का सूक्ष्म सौन्दर्य उत्तम काव्य की स्वाभाविक विशेषता है और वह रहीम जैसे अनुभवी, सहृदय, प्रतिभा संपन्न कुशल कवि की सृष्टी में सहज ही समाविष्ट हो गई है।

इस प्रकार नीति जैसे शुष्क तथा अप्रिय विषय को भी रहीम सरस तथा प्रियकर ढंग से छन्दोबध्द करने में सफल हुए हैं।

संदर्भ सूची

(१) हिन्दी साहित्य
डॉ. श्यामसुन्दरदास
प्रथम संस्करण, पृष्ठ २३५.

(२) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरुण "
प्रकाशक – विनोद पुस्तक मन्दिर, प्रथम संस्करण
दोहा क्र. ६३ पृष्ठ सं. ६२.

(३) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरुण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १०७ पृष्ठ सं. ७४.

(४) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २४१ पृष्ठ सं. २२.

(५) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरुण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ७९ पृष्ठ सं. ६५.

(६) रहीम – सतसई
विश्वम्भर"अरुण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १०१, पृष्ठ सं. ७२.

(७) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, पृष्ठ सं. ९.

(८) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरुण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २३६, पृष्ठ सं. ११.

(९) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २३३, पृष्ठ सं. २२.

(१०) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २४० पृष्ठ सं. २२.

(११) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १८२, पृष्ठ सं. ९५.

(१२) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. ६०, पृष्ठ सं. ६.

(१३) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २५ पृष्ठ सं. ५२.

(१४) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २४७, पृष्ठ सं. ११४.

(१५) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. १४२, पृष्ठ सं. १३.

(१६) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २८ पृष्ठ सं. ५३.

(१७) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. ८६, पृष्ठ सं. ८.

(१८) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ४१, पृष्ठ सं. ५६.

(१९) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २३, पृष्ठ सं. ५१

(२०) रहीम ग्रंथावली
सम्पा-मिश्र विद्यानिवास
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १, पृष्ठ सं. १६१.

(२१) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण दोहा क्र. १८८, पृष्ठ सं. १८.

(२२) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २५५, पृष्ठ सं. ११६.

(२३) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २१८, पृष्ठ सं. २०.

(२४) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १६६, पृष्ठ सं. ९०.

(२५) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. १६४, पृष्ठ सं. १५.

(२६) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ११४, पृष्ठ सं. ७६.

(२७) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. ६०, पृष्ठ सं. ६.

(२८) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १५८, पृष्ठ सं. ८८.

(२९) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १, पृष्ठ सं. ४५.

(३०) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ७१, पृष्ठ सं. ६५.

(३१) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ११०, पृष्ठ सं. ७५.

(३२) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १६६, पृष्ठ सं. ९०.

(३३) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १२३, पृष्ठ सं. ७८.

(३४) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १४१, पृष्ठ सं. ८३.

(३५) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २५५, पृष्ठ सं. ११६.

(३६) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. १२८, पृष्ठ सं. १२.

(३७) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण दोहा क्र. १, पृष्ठ सं. ४५.

(३८) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १६, पृष्ठसं. सं. ४१.

(३९) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण दोहा क्र. २२१, पृष्ठ सं. २१.

(४०) रहीम का नीति-काव्य
डॉ. बालकृष्ण "अकिंचन"
प्रकाशक – अलंकार प्रकाशन,
प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं. २४२.

(४१) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. ६४, पृष्ठ सं. ६.

(४२) हिन्दी साहित्य का आदिकाल
द्विवेदी हजारीप्रसाद
तृतीय संस्करण, पृष्ठ सं. ५७.

(४३) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण दोहा क्र. २५७, पृष्ठ सं. २४.

(४४) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ९ पृष्ठ सं. ४८.

(४५) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण दोहा क्र. १५२, पृष्ठ सं. ८६

(४६) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण दोहा क्र. १६६, पृष्ठ सं. ९०.

(४७) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण दोहा क्र. ४५, पृष्ठ सं. ५.

(४८) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १७८, पृष्ठ सं. ९४.

(४९) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ३७, पृष्ठ सं. ४.

(५०) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण")
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २३७, पृष्ठ सं. ११९.

(५१) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १६६, पृष्ठ सं. ९०.

(५२) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २३४, पृष्ठ सं. २२.

(५३) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ७१, पृष्ठ सं.. ६५.

(५४) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. ४५, पृष्ठ सं. ५.

(५५) रहीम – सतसई
विश्वम्भर " अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ८२, पृष्ठ सं. ६६.

(५६) रहीम – सतसई
वि श्वम्भर " अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १८६, पृष्ठ सं. ९६.

(५७) रहीम – सतसई
विश्वम्भर " अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २१, पृष्ठ सं. ५१.

(५८) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. १२२, पृष्ठ सं. १२.

(५९) रहीम – सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण दोहा क्र. २४७, पृष्ठ सं. ११४.

(६०) रहीम - सतसई
विश्वम्भर " अरूण "
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ३३, पृष्ठ सं. ५४.

(६१) रहीम का नीतिकाव्य
डॉ. बालकृष्ण "अकिंचन"
प्रकाशक - अलंकार प्रकाश
प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं. २९८.

(६२) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २२८, पृष्ठ सं. १०८.

(६३) रहीम - सतसई
विश्वम्भर " अरूण "
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १५५, पृष्ठ सं. ८७.

(६४) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २४०, पृष्ठ. सं. २२.

(६५) रहीम के दोहे
प्रकाशक - लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. २५६, पृष्ठ सं. २४.

(६६) रहीम - सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ५६, पृष्ठ सं. ६०.

(६७) रहीम का नीतिकाव्य
डॉ. बालकृष्ण "अकिंचन"
प्रकाशक - अलंकार प्रकाशन
प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं. १९१

(६८) रहीम – सतसई
विश्वम्भर " अरूण "
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. २०४, पृष्ठ सं. १०१.

(६९) रहीम सतसई
विश्वम्भर "अरूण"
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. १३२, पृष्ठ सं. ८१.

(७०) रहीम के दोहे
प्रकाशक – लोंढे शंकरराव
तीसरा संस्करण, दोहा क्र. ८६, पृष्ठ सं. ८.

(७१) रहीम – सतसई
विश्वम्भर " अरूण "
प्रथम संस्करण, दोहा क्र. ७१, पृष्ठ सं. ६५.